सम्मतियाँ

श्री ज्योतीन्द्रनाथ के प्रेत की छाया नामक कहानी संग्रह की सभी दृष्टियों से कलात्मक, सजीव, आकर्षक और संवेदनश कहानीकार की कलाकुशलता को देखकर हिन्दी साहित्य को उ· आशायें हैं।

सरलता और संवेदनशीलता ने मुझे मुग्ध कर लिया। इनके उज भविष्य और सफलता में मुझे पूर्ण आस्था है।

रामखेलावन पाण्डेय, एम० ए०, डी० लि
प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय।

की छाया

(कहानी संग्रह)

लेखक

गेतीन्द्रनाथ

प्रकाशक

पुस्तकमाला

रियासराय

मूल्य—१॥)

प्रथम संस्करण १६५४

आमुख

कहानी का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ ही माना जाता है। जब मनुष्यों ने बोलना सीखा उस समय से ही कहानी सुनने की प्रवृत्ति उसमें जाग्रत हुई। घर के बच्चे अपनी दादी नानियों से राक्षस, भूतप्रेत और पशु-पक्षियों की कहानियाँ मानव-सभ्यता के आदिकाल से ही सुनते आ रहे हैं। उनकी यह प्रवृत्ति आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि कहानी सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभाविक होती है। प्राचीन युग की कहानियों में मनोरंजन-तत्त्व की प्रधानता होती थी। उनका उद्देश्य होता था श्रोताओं की उत्सुकता, उनके कौतूहल को ;उद्दीप्त करना। बच्चे बड़े चाव से इस प्रकार की कहानियाँ सुना करते थे। इन कहानियों के द्वारा मनोरंजन तो होता ही था साथ ही नीति के उपदेश भी प्रत्यक्ष रूप में मिला करते थे। पंचतन्त्र, हितोपदेश, वैताल-पचीसी, सिंहासन बतीसी तथा ईसप की कहानियाँ इसी कोटि की है। संसार के प्रायः सभी देशों में इनका किसी-न-किसी रूप में अस्तित्व पाया जाता है। कालक्रम से मनुष्य की बुद्धि का ज्यों-ज्यों विकास होता गया त्यों-त्यों कहानी-कला भी विकसित होती गई और उसके रूप में परिवर्तन होते गये। आजतो

हम सभी समुन्नत देशो के साहित्य म कहानी-कला का एक अत्यन्त विकसि रूप पाते है। कथा-साहित्य में उपन्यास की अपेक्षा गल्प अर्थात् लघु-कहानियों की लोकप्रियता क्रमशः बढ़ती जा रही है और कहानी में कथानक का अंश क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा है। आधुनिक कहा-नयो में कथा-वस्तु की अपेक्षा चरित्र-चित्रण को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है और यह चरित्र-चित्रण भी स्थूल न होकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्तर पर होता है। इसी प्रकार आधुनिक कहानियों में किसी प्रकार की नीति का उपदेश न होकर एक संकेत या इशारा मात्र होता है और कहानी का अंत इस रूप में होता है जिससे पाठकों के मन में एक अतुल्य भावना, एक जिज्ञासा जाग उठे और वे कुछ सोचने को वाध्य हों। पाठकों की कल्पना के लिये अंत की परिस्थितियों छोड़ दी जाती हैं।

हिन्दी में पहले धार्मिक, ऐतिहासिक, भूत-प्रेत, जादूटोना आदि से सम्बन्धित कहानियाँ अधिक लिखी जाती थी, इन कहानियों द्वारा एक विलक्षण वातावरण की सृष्टि करके पाठकों के कौतूहल को जाग्रत कर देना कहानीकार का मुख्य ध्येय होता था। बाद में चलकर बंगला से अनुवादित कहानियों का प्रचलन हिन्दी में हुआ। वर्तमान शताब्दी के पूर्व हिन्दी में जो कहानियाँ लिखी गई थी उन्हें साहित्यिक नहीं कह सकते। उनमें अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। वास्तविक जीवन के साथ उनका संबंध नहीं और न मानव स्वभाव का कोई चित्रण उनमें मिलता है। किन्तु 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ हिन्दी में मौलिक कहानियों की रचना होने लगी, यद्यपि उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। सन् १६१० ई० के बाद मासिक 'इन्दु' तथा 'सरस्वती' में

कई उत्कृष्ट कहानियाँ प्रकाशित हुईं । सन् १६१६ में प्रेमचन्द की प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' सरस्वती में छपी और उसके बाद से हिन्दी के कहानी साहित्य में एक नूतन युग का विकास हुआ जिसकी धारा आज आज तक प्रवहमान है। प्रेमचन्द से प्रभावित होकर बहुत से लेखकों ने कहानी लिखना आरम्भ किया। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं द्वारा कहानी साहित्य को समृद्ध किया है और आज भी कर रहे हैं। आज हिन्दी में भावप्रधान, चरित्रप्रधान, मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार की कहानियाँ धड़ल्ले से लिखी जा रही है और उनमें यथार्थ जीवन का पूर्ण चित्र एवं विशद मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। इस प्रकार आज का हिन्दी कहानी साहित्य विकासोन्मुख और गतिशील है और नये-नये लेखक मौलिक रचनाओं द्वारा हिन्दी के साहित्य भंडार को समृद्ध बना रहे अपनी हैं।

प्रस्तुत 'कहानी-संग्रह' के लेखक श्री ज्योतीन्द्रनाथ हिन्दी-कहानी क्षेत्र में यद्यपि नवागन्तुक है फिर भी थोड़े समय के अन्दर ही इन्होंने कहानियाँ लिखकर लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। संग्रह की अधिकांश कहानियाँ विविध मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है और पाठकों ने उन्हें पसन्द किया है। इस संग्रह में घटना प्रधान, चरित्र प्रधान और भावात्मक सभी प्रकार की कहानियाँ हैं। लेखक ने कई कहानियों में पाश्चात्य शैली को अपनाया है। कहानी कला की एक विशेषता है पाठकों की उत्सुकता को अन्त तक बनाये रखना। यह विशेषता संग्रह की कई कहानियों में पायी जाती है। संग्रह की प्रथम कहानी 'प्रेत की छाया' उसी प्रकार की एक कहानी है। 'स्मृति के आँसू' में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

सुन्दर रूप में हुआ है। लेखक ने अपनी इन कहानियों को यथासम्भव रोचक बनाने की कोशिश की है और वे बहुत कुछ सफल भी हुये हैं। कहानियों की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है और कथोपकथन मे स्वभाविकता है। सब मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि लेखक मे रोचक एवं कलात्मक कहानी लिखने की क्षमता है और उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे आगे चलकर हिन्दी को और भी सुन्दर कहानियाँ भेंट कर सकेंगे।

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र
एम० एल० सी
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
चन्द्रधारी मिथिला कौलेज
दरभंगा

माघ शुक्ल पंचमी
सम्वत् २०१०

लेखक के दो शब्द :—

आरम्भ से मुझे लिखने का शौक है। यह शौक अधिक पढ़ने के कारण हुआ। और पढ़ना मेरे लिये मनबहलाव का सब से अच्छा तरीका रहा है।

यूँ लोग कहते हैं कि लेखक और कलाकार वास्तविक जीवन से दूर कल्पना की दुनिया में विचरण करने वाले प्राणी होते हैं। लेकिन वास्तव में जीवन को अच्छी तरह समझने के लिये उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं। वास्तविक कलाकार जीवन की गुत्थियो को, मनुष्य के हृदय के अन्दर के संघर्ष और कोलाहल को अच्छी तरह समझ लेता है। और वह जो समझ पाता है उसी को रचनाओं द्वारा जनता के सामने रखता है।

जीवन को समझने की कोशिश में जीवन की गुत्थियाँ मस्तिष्क के सामने आईं और उनपर मनन करने का अवसर मिला। फिर उन विचारों और भावों को कहानियों के रूप में प्रगट करने की प्रेरणा मिली और फल-स्वरूप ये कहानियाँ तैयार हुईं।

अपनी रचनायें होने पर भी इन कहानियों के संबंध में मेरे मन में बहुत ऊँचे भाव हैं, ऐसी बात नहीं है। मित्रों ने सराहना की, संपादकों

और विद्वानों ने प्रोत्साहन दिया तो लिखने की प्रेरणा मिलती रही। पर इतना जरूर है कि साहित्य के क्षेत्र में कुछ प्रयास करते रहने से हार्दिक संतोष मिलता रहा। जब कई मित्रों ने कहानियों के प्रकाशन पर जोर दिया तो मैं इन कहानियों को खुद एक दफा पढ़ गया। मुझे ऐसा लगा कि विद्वानों और मर्मज्ञों के निकट इन कहानियों को मूल्यांकन के लिये रखना जरूरी है। इससे अपनी त्रुटियों की जानकारी होगी, भविष्य के लिये सम्मतियाँ और सलाह मिलेंगे जो पथ प्रदर्शन का काम देंगे। इन बातों को सोच मैं कहानी संग्रह के प्रकाशन के प्रस्ताव से सहमत हो गया। पाठकों, विद्वानों, लेखकों और आलोचकों के हाथ में इस संग्रह को रखने में भी यही विचार सर्वोपरि है।

दरभंगा
१०. २. ५४.

ज्योतीन्द्रनाथ

प्रकाशकीय

हिन्दी के पाठकों के सम्मुख इस कहानी संग्रह को रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। यों तो श्री ज्योतीन्द्रनाथ की प्रायः पचासों कहानियाँ यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी है परन्तु अभी तक उनका समुचित संकलन नहीं प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत संग्रह में उनकी नौ चुनी हुई कहानियाँ संग्रहीत की गई है। कला और मनोरञ्जन की दृष्टि से इन कहाँनियों का स्तर काफी ऊँचा है। श्री ज्योतीन्द्रनाथ की भाषा अत्यन्त सरल और भाव अत्यन्त सुलझे हुए हैं। कहीं भी क्लिष्ट शब्दावली नहीं, कोई भी वाक्य अधिक लम्बा नहीं। भाषा हल्की और प्रवाहयुक्त है और जीवन के तत्वों की चासनी लिए हुए है।

'प्रेत की छाया' अद्भुत और अत्यन्त रोचक है। अंत तक पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है और कल्पना का उड़ान तो अलौकिक है।

'स्मृति के आंसू' में घटनाओं का वेग अत्यन्त तीव्र है। पहली पत्नी की स्मृति, स्मृति के आंसू! सतीश के हृदय का छलछलाता आवेग, मानों कोई पुराना बांध टूट गया हो! "तीस दिन" समाज के उस अंग पर दृष्टि-पात कराता है जिसकी चिन्तना कर हृदय दहल उठता है। यह कहानी बड़े बापों के दुश्चरित बेटों-समाज के कलंकों पर गहरा कटाक्ष है और भावी बहूबेटियों के लिए अनुपम उपदेश प्रस्तुत करता है इस कहानी

का व्यंग, इस कहानी का व्याघात षोड़ष वर्षीया भोली सुधा पर नहीं है, बल्कि उन शिक्षित सभ्य पिशाचों पर है जो समाज का कलंक बने हुए हैं न जाने कितनी सुधाओं का बलिदान समाज में नित्य होता है।

'संघर्ष' और 'न्याय का एक दिन' बहुत छोटी कहानियाँ हैं। परन्तु संघर्ष का निष्कर्ष स्पष्ट है। मनुष्य में यद्यपि मस्तिष्क और विचारशक्ति है, तथापि कर्मों में वह स्वाधीन है और कर्म के अनुसार फल उसे मिलते रहेंगे। पृथ्वी का संघर्ष जारी रहेगा। मनुष्य चाहे कैसा भी हो, उसे बारबार पृथ्वी पर आना पड़ेगा। "न्याय का एक दिन" का यही संकेत है।

'माँ का हृदय' में तारा का चरित्र अत्यन्त उज्वल बन पड़ा है। 'इलाज' का हास्य अत्यधिक सूक्ष्म और व्यापक है। यह कहानी संग्रह की सर्वोत्कृष्ट कहानियों में है। 'मन के दोष' उस भीषण घटना का प्रतिबिम्ब है जो भारत के बटवारे के साथ ही साथ घटी। सारे देश में प्रलय मच गया था। हिन्दू मुसलमानों के बीच मारकाट मची हुई थी। फिर धीरे-धीरे अमनचैन हो गया। मगर कितने हीं के मन का काँटा नहीं निकला।

आशा है ये कहानियाँ हिन्दी के पाठकों को रुचिकर होगी और श्री ज्योतीन्द्रनाथ के अन्यान्य संग्रह उपस्थित करने का हमें फिर मौका मिलेगा।

अरुण पुस्तकमाला

लहेरियासराय

प्रेत की छाया

अपने साहित्यिक जीवन में जितने आदमियों से मेरा परिचय हुआ, उनमें आनन्द सबसे अनोखा था। पहले-पहल उससे मेरी मुलाकात एक सार्वजनिक सभा में हुई थी। न जाने उसमें ऐसी क्या विशेषता थी, कि मैं उसकी ओर आकर्षित हो गया, और जब मैंने देखा कि वह भी मुझसे विशेष रुचि रखता है, तो उससे मैत्री कर मुझे बहुत खुशी हुई।

आनन्द का व्यक्तित्व बहुत बड़ा नहीं था। दुबला-पतला, साधारण-सा शरीर उसका था; पर उसके चेहरे पर एक ऐसा भाव था कि देखते ही लगता था, मानो यह साधारण आदमी का चेहरा नहीं है। उसका शरीर दुर्बल और बहुत कोमल था—इतना कोमल कि किसी को उसका शरीर छूते भी डर लगता था। यों अब हमारी वह उम्र नहीं थी कि

आपस में खेल-खेल में भी हाथा-पाई कर बैठते; पर शाबाशी देने के भाव से भी आनन्द की पीठ पर मुक्का जमाने की हिम्मत मुझे कभी न हुई। लगता कि एक अँगुली का आघात भी यह कोमल शरीर सँभाल कैसे सकेगा। एक दोस्त मजाक से आनन्द के विषय में कहा करता कि आनन्द को भगवान् ने औरत बनाना चाहा था; लेकिन वह गलती से मर्द हो गया। दूसरे मित्र का कहना था कि अगर आनन्द औरत होता, तो वह उससे जरूर शादी कर लेता।

आनन्द इन बातों को सुन, सिर्फ हँस देता। वह हँसी-मजाक बहुत कम करता था। इन बातों से उसे रुचि न थी! उसे शौक सिर्फ एक बात का था। एकान्त में बैठ कर सफ़ेद कागज पर तूलिका से रेखायें खींच-खींच कर मूक, पर सजीव तस्वीरें बनाना उसे बहुत अच्छा लगता था। वह चित्रकार था। इस कला ने जैसे उसे अपना लिया था। पढ़ने-लिखने में वह मन न लगा सका और हारकर उसने पढ़ाई छोड़ दी।

उसकी तस्वीरें देख कर उसके भविष्य पर भरोसा होता था। वह अपने भाई के साथ रहता था। भाई तो बहुत सहृदय थे, पर उसकी भाभी को आलसी-जैसा बेकार बैठ कर खानेवाला यह देवर ज़रा भी नहीं भाता था। भाभी का व्यवहार कभी-कभी बहुत असह्य हो जाता था।

आनन्द ने कलाकार का हृदय पाया था। वह बहुत भावुक था। एक दिन वह घर छोड़ कहीं चला गया। जाने के पहले वह मेरे पास आया था। मुर्झाये हुए गुलाब के फूल की तरह उसका चेहरा उदास था; उसकी आँखें लाल थीं, जैसे एक-दो घण्टे अभी-अभी वह रोया हो।

उसकी कर्कशा भाभी के स्वभाव के बारे में मैं जानता था। उसकी उदासी का कारण समझते मुझे देर न लगी। मैंने उसे धैर्य बँधाया, अपने साथ भोजन कराया और रात में अपने ही यहाँ सो जाने को कहा। उसने मेरी बात मान ली। पर दूसरे दिन सुबह उठने पर, मैंने उसे नहीं पाया। सोचा, शायद अपने घर चला गया हो। पर थोड़ी देर बाद उसके भाई उसे ढूँढ़ते हुए मेरे पास आये। वह बहुत घबराये हुए थे और अपनी पत्नी पर बेतरह क्रुद्ध मालूम पड़ते थे। मुझे जो मालूम था, मैंने बता दिया। मुझे खुद बहुत चिन्ता हुई और मैं आनन्द को ढूँढ़ने की कोशिश की; पर आनन्द का पता न चला। मैं निराश हो गया। मुझे बहुत अफ़सोस हुआ कि मेरे एक ऐसे अच्छे मित्र का ऐसा दुखद अन्त हुआ। मुझे विश्वास था कि कोमल शरीरवाला, भावुक आनन्द इधर-उधर भटक कर ज्यादा दिन न जी सकेगा।

ईश्वर की मर्जी का पता किसीको नहीं रहता। मैं बहुधा सोचता कि कितना अच्छा होता, अगर मेरी और ईश्वर की मर्जी एक हो जाती! मैं जानता था, ऐसा सम्भव नहीं है; लेकिन एक बात की ओर मेरा ध्यान गया था। मैं देखता था कि भगवान् मेरी मर्जी का बहुत खयाल रखते थे। और जो बात मैं दिल से चाहता, वह अकसर हो जाती। इसे क़िस्मत कहिये, संयोग कहिये या इच्छा-शक्ति की मज़बूती कहिये; पर मैं ईश्वर का आभारी था।

इधर कई दिनों से मुझे आनन्द की बहुत याद आ रही थी। मुझे विश्वास हो गया था कि आनन्द की चलती-फिरती काया अब इस पृथ्वी

र नज़र नहीं आयगी, फिर भी मैं कल्पना कर रहा था कि आनन्द से
मझ कर मैं उससे बातें कर रहा हूँ। ऐसा करने में मुझे एक प्रकार का
संतोष मिल रहा था। मै सोच रहा था कि अब अगर आनन्द को
ाऊँ, तो उसे अलग न रहने दूँगा। उसे अपने साथ रखूँगा। मैं
कहानियाँ लिखूँगा, वह चित्र बनायेगा। आनन्द के साथ रहने में कितना
आनन्द मिलेगा!

मैंने कई दफा कोशिश की कि इन बातों को दिमाग में न आने दूं।
जो चला गया, जिससे कभी भेंट न होगी, उसकी चिन्ता कर दुखी होने
। क्या लाभ? पर मैं अपने को रोक न पाता। उसकी याद बरबस आ
ाती। और एक अरसे के बाद उस दिन शाम को आनन्द आकर मेरे
ामने अचानक खड़ा हो गया। इस बीच उसके भाई का तबादला हो
ुका था और वह इस नगर से कहीं अन्यत्र चले गये थे।

आनन्द को देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। खुशी मुझे
कितनी हुई, इसका मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता। मुझे अपनी
आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। सोचा कि सपना तो नहीं देख रहा हूँ,
पर आनन्द—सचमुच का आनन्द मेरे सामने खड़ा था। मेरे मुख से
नायास ही निकल गया—"अरे आनन्द, अब मैं तुम्हें कहीं जाने नहीं
गा।"

आनन्द हँसा—"अब निकालोगे तब भी नहीं जाऊँगा। बहुत
भटक चुका।"

"इस तरह कोई भागता है! कहाँ रहे इतने दिन?"

"बहुत लम्बी कहानी है। निश्चिन्त होकर कहूँगा।"

"मैं तो समझता था, अब तुमसे भेंट न होगी।"

"मुझे अभी बहुत काम करना है, भाई! इतनी जल्दी न मरूँगा। दुनिया में आया हूँ, तो कुछ करके जाऊँगा, दुनिया को कुछ देकर जाऊँगा।"

आनन्द हमेशा इसी तरह की बातें करता था, मानो उसे अपनी सफलता पर और उज्ज्वल भविष्य पर पूरा भरोसा हो। बहुधा मुझे ताज्जुब होता कि वैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में रह कर भी अपना यह विश्वास वह कैसे कायम रख सका। इन बातों को ले, कई लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। पर कोमल शरीरवाले आनन्द में बहुत दृढ़ता थी, वह कभी विचलित न होता।

भोजन आदि से निवृत्त हो आनन्द खूब गहरी नींद सोया। दूसरे दिन एक पहर दिन बीता, तब उसकी नींद टूटी। मैंने भी थका-माँदा जान, उसे छेड़ना उचित न समझा। न जाने कितने दिनों बाद उसे इस तरह डट कर भोजन करने के बाद संतोष और सुख की मीठी नींद सोने का अवसर मिला था। उसने जैसी यात्रा की थी, उसमें कितनी अनिश्चितता थी और कितना खतरा था!

(२)

उस दो पहर को हम दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। आनन्द ने विस्तारपूर्वक सभी बातें बतायीं: कैसे, कभी उसे इतने भाग्य करते

की नौबत आयी; जंगलों में और सड़कों के किनारे रातें बितानी पड़ीं। बहुत रोचक लेकिन दर्दनाक कहानी थी।

आदमी जब खतरों से निकल जाता है, तो बीते हुये कठिन दिनों का वर्णन करने में उसे एक प्रकार का मज़ा मालूम पड़ता है। आनन्द को वैसा ही मजा मिल रहा था। वह बहुत विस्तार से और उत्साह से उन बातों का वर्णन कर रहा था। मैं भी उसकी यात्रा की कहानियों में रुचि ले रहा था।

अपनी यात्रा की कहानियाँ कह चुकने के बाद आनन्द बोला—"वैसी जिन्दगी से मेरी तबीअत अब भर गई। अब मैं कुछ करना चाहता हूँ। मैं कुछ कर सकूँ, इसके लिये मुझे सिर्फ दो चीज़ें चाहिये। ओह, ये दो चीज़ें मुझे कितनी दुर्लभ लगती हैं! इनकी खोज में मैं दर-दर की खाक छानता फिरा।" इतना कह आनन्द उदास हो गया।

मैं चकराया; पूछा—"वे दो चीज़ें क्या हैं, आनन्द?"

"एक कलाकार—सच्चे कलाकार के लिए ये दो चीज़ें कितनी जरूरी हैं, यह एक कलाकार ही समझ सकता है, भाई! मेरी इस जरूरत के महत्त्व को तुम्हीं समझ सकते हो। मैं चाहता हूँ, एकान्त और मानसिक शान्ति।"

मैं हँस पड़ा, बोला—"बस!"

"तुम हँसते हो! मेरे लिये ये चीज़ें सुलभ न थीं। भाई के यहाँ रोज का कलह, रोज की तकरार, ताने और व्यंग्य! मैं कहता हूँ, वैसे वातावरण में रह कर तुम कभी भी कहानियाँ नहीं लिख सकते। मैं

एकान्त और मानसिक शान्ति की खोज में भटकता रहा। एकान्त मुझे मिला, पर मानसिक शान्ति न मिली।"

"सुनो आनन्द!" मैंने कहा—"तुम्हारी मजबूरी मैं समझता हूँ। एकान्त की तुम्हें बहुत ज़रूरत है। मैं महसूस करता हूँ, मानसिक शान्ति के लिये तुम्हें उपयुक्त संगति चाहिये। तुम मेरे साथ रहो। मै तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हारे एकान्त में कभी खलल न होगा; तुम्हारे दिमाग पर कभी ठेस न लगेगी। तुम निश्चिन्त हो, कला की साधना करो।"

"मेरे कारण तुम्हें कितनी तकलीफ होगी!"

"ये बातें छोड़ो। ये शिष्टाचार की बातें हैं। तुम्हारा बोझ ही कितना है, भले आदमी! इस मुख्तसर कोमल शरीर का बोझ उठाने में भी आनन्द है, आनन्द भाई! बहुत से ऐसे बोझ होते हैं जिन्हें ढोने में खुशी और संतोष होता है।"

"जैसे एक खूबसूरत जवान औरत का बोझ ढोना बहुत से लोग खुश किस्मती की बात समझते है!" आनन्द हँस कर बोला।

"ठीक, पर यहाँ वह नहीं है; हालाँकि अगर तुम औरत होते, तो मैं तुमसे ज़रूर शादी कर लेता।"

आनन्द हँसा—वही मधुर, मोहक और सरल हँसी। ऐसा मजाक न जाने उसके साथ कितनी दफा हो चुका था, और हर दफा वह इस मजाक का जवाब ऐसी ही हँसी से देता।

आनन्द मेरे साथ रहने लगा। तीन-चार रोज तक तो वह दिन-रात सोया किया। मैंने एक दफा उससे कहा, "इसी लिये तुम एकान्त चाहते थे, दोस्त ! यह एक बीमारी है।"

"कैसी बीमारी ?"

"इसे आलस की बीमारी कहते हैं। जिस तरह नींद का न आना एक बीमारी है, उसी तरह बहुत नींद आना भी एक बीमारी है।"

"हूँ, बीमारी वगैरह मुझे नहीं है। अभी थकान मिटा रहा हूँ। फिर देखना।"

और मैंने देखा, सचमुच दो हफ्ते बाद सोने की उसकी आदत छूट गई। उस दिन वह बहुत सवेरे उठा। नित्यक्रिया से निवृत्त हो बोला, "मैं इसी वक्त डट कर खा लूंगा। दिन में भोजन नहीं करूँगा।"

"कहीं जाना है क्या ?"

"हाँ," अपनी कोठरी की ओर अँगुली से इशारा कर वह बोला—"वहाँ जाना है। लेकिन बीच में बाधा देने की ज़रूरत नहीं है।"

मैं समझ गया, बोला—"अच्छा, पर भले आदमी, अगर पेट में चूहे कूदने लगें और हाथ जवाब दे दें, तो आहिस्ते से बाहर निकल आना।"

"इसके लिये निश्चिन्त रहो।"

और उस दिन शाम को आनन्द ने मेरे सामने जो चीज लाकर रख दी, उसे देख मैं विस्मय-विमुग्ध रह गया। टकटकी लगाये उसकी ओर देखता रहा; आँखों को इतनी प्रिय लग रही थी वह चीज। मैंने आनन्द से पूछा—"आनन्द, यह तुम्हारी चीज है ?"

मेरे स्वर में विस्मय का जो भाव था, उसे आनन्द ने लक्ष किया। उसे कुछ ठेस लगी, गम्भीर हो बोला—"हाँ भाई, अभी-अभी तो समाप्त किया है!"

मैं चित्र-कला का पारखी नहीं था। चित्रों में कला किस स्थल पर रहती है और उसे कैसे ढूँढ़ना चाहिये, यह मुझे नहीं मालूम था। आनन्द के उस चित्र में कैसी कला और कितनी कला थी, यह मैं नहीं बता सकता। मैं सिर्फ एक चीज़ देख रहा था। उस चित्र में बहुत सौन्दर्य था। वह सौन्दर्य बरबस आँखें अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। देखनेवाला मंत्रमुग्ध हो जाता। आनन्द के चित्र मैं शुरू से देख रहा था; पर उसका चित्र इतना सुन्दर हो सकता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैंने प्रशंसा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुये, कहा—"तुमने कमाल कर दिया, आनन्द! मालूम होता है, इतने दिनों तक तुमने खूब अभ्यास किया है। तुम्हारा चित्र कितना अच्छा है!"

प्रशंसा के वाक्य सुन आनन्द की छाती गौरव की भावना से फूल उठी। संतोष-भरी मुस्कराहट के साथ वह बोला—"जब से घर छोड़ा है, आज ही मैंने तूलिका उठाई है। पर मुझे विश्वास था कि मैं सुन्दर चित्र बनाऊँगा।" आनन्द के चेहरे पर एक प्रकार की चमक थी, और मैंने लक्ष किया कि आज वह बहुत खुश था। सच्चे कलाकार को कला की साधना में ही आनन्द मिलता है। धन या वैभव की प्राप्ति से कलाकार को उतना सुख नहीं मिलता, जितना एक कलापूर्ण और सफल कलाकृति का निर्माण करने में मिलता है।

और आनन्द की वह खुशी और उसके चेहरे की वह चमक कायम रही। आनन्द अब नवीन चित्रों के निर्माण में जुट गया। उसके चित्रों का तांता बँध गया। बात यह नहीं थी कि चित्र सिर्फ मुझे ही अच्छे लगे थे। जनसाधारण को और कला के पारखियों को भी आनन्द के चित्र बहुत पसन्द आये। आनन्द का यश फैलने लगा। शहर में, प्रान्त में और फिर देश में उसकी कीर्ति फैल गई। उसके चित्र प्रमुख पत्रों में छपते। कई प्रदर्शनियों ने उसके चित्रों को पुरस्कृत भी किया। विदेशों को भी उसने अपने चित्र भेजे, और वहाँ भी जब उन चित्रों की प्रशंसा हुई, तो देश में उसका सम्मान और भी बढ़ गया।

मेरे देखते-देखते दुनिया का मान-सम्मान और वैभव आनन्द के चरणों पर लोटने लगा। मुझे बहुत ताज्जुब होता। एक एकान्त कोठरी में बैठ कर जो काम आनन्द करता है, उसकी बदौलत इतना मान, इतना यश! मुझे कभी उसकी सफलता पर खुशी होती, कभी आश्चर्य होता, कभी ईर्ष्या होती और कभी उसकी मैत्री पर गर्व होता। अभी तक उसके प्रत्येक नवीन चित्र का पहला दर्शक मैं ही होता, इसका मुझे अभिमान था; और फिर इतना बड़ा कलाकार मेरे साथ रहता था, यही क्या कम गौरव की बात थी! आनन्द की इस अभूतपूर्व सफलता पर उसके सभी मित्र और परिचित चकित थे।

अब आनन्द को किसी चीज़ की कमी न थी। एक दिन मुझ से बोला, "मैंने तो तुम्हें बहुत तकलीफ़ दी, भाई! अब मुझे जाने की इजाजत दो। नजदीक ही रहने की कोशिश करूँगा।"

मुझे अच्छा न लगा। दिल पर धक्का पहुँचा; बोला—"हाँ भाई, अब तुम बड़े आदमी हो गये हो। मुझ जैसे गरीब के साथ कैसे रह सकते हो ?"

आनन्द ने मेरा भाव लक्ष कर लिया। हँस कर बोला—"पागल हो गये हो क्या !" फिर कभी उसने अलग होने की बात न की।

(३)

आनन्द का जीवन नियमित बन गया था। वह सवेरे उठता। नित्यक्रिया से निवृत हो, आठ बजे डट कर भोजन कर लेता। नौ बजे वह अपनी कोठरी में चला जाता, फिर चार बजे शाम को निकलता। छः बजे हम दोनों एक साथ भोजन करते। उसके बाद एक साथ बैठ कर गप्प करते या कभी-कभी कुछ दूर तक टहल आया करते। रात में आनन्द कभी कोई काम न करता। फिर भी सवेरे देर तक सोने की उसकी आदत थी। घड़ी की सुइयाँ जिस तरह एक ही चिर-परिचित रास्ते से होकर बार-बार गुजरती रहती हैं, उसी तरह एक ही क्रम के अनुसार आनन्द का समय बीतता—ऐसा जीवन जिसमें कहीं विविधता नहीं; नवीनता नहीं—कभी-कभी मुझे बहुत शुष्क और नीरस लगता।

उस दिन शाम को खाना खाने के बाद हम दोनों कहीं बाहर जाने के बजाय कमरे में बैठ कर बातें करने लगे। उस दिन आनन्द ने एक बहुत सुन्दर चित्र बनाया था। अभी कुछ देर पहले शहर के कुछ सम्मानित व्यक्ति आये थे और उस चित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा कर गये थे। वह

चित्र प्रशंसा के योग्य था भी। मैंने भी उसी चित्र की चर्चा चलायी—"तुम्हारा यह चित्र तो आनन्द, मालूम होता है, जैसे किसी देवता ने बनाया हो!"

मैंने ताज्जुब के साथ देखा, आनन्द के चेहरे पर एकाएक सफ़ेदी-सी छा गई। वह इस तरह चौंका, जैसे वह कोई चोरी कर रहा था और किसीने उसकी चोरी पकड़ी हो। उसकी घबराहट देख मैं चिल्ला उठा—क्यों आनन्द, क्या हुआ?"

आनन्दने अपने को सँभाला। उसने रूमाल से अपने चेहरे को पोछा और धीमे स्वर में कहा—"तुमने ऐसी बात कहीं मंगल, जिसने मेरे दिल को छू दिया।"

मैं जानता था कि आनन्द को ईश्वर पर पूरा विश्वास है और देवताओं का बहुत सम्मान करता है। मैंने अनुमान से कहा—"मैं नहीं जानता था कि देवताओं पर तुम्हारी इतनी श्रद्धा है कि कोई तुम्हें देवता कह दे, तो तुम्हें इतनी ठेस लगेगी।"

"यह बात नहीं है, मंगल!"

"तो फिर बात क्या है?"

"तुम्हारा संकेत सही था।"

"मेरा संकेत!" मैं अचरज से बोला—"मैंने किस बात का संकेत किया था?"

"सचमुच ये तस्वीरें मैं नहीं बनाता।" इतना कहते-कहते आनन्द चुप हो गया।

उसके चेहरे को देख मुझे हँसी आई। मैं जानता था कि आनन्द अन्ध-विश्वासी है। मजाक के तौर पर मैं बोला—"भई, रामायण की तो सिर्फ़ एक पंक्ति हनुमान जी ने लिखी थी, पर क्या तुम्हारी सभी तस्वीरें कोई देवता ही बनाते हैं?"

"यही तो अफ़सोस है, भाई!" आनन्द गम्भीर स्वर में बोला—"मुझ पर किसी देवता की नहीं, प्रेत की कृपा है।"

मैं बहुत मुश्किल से अपनी हँसी रोक रहा था। आनन्द जैसी गम्भीरता से बातें कर रहा था, उसे देख मुझे हँसने का साहस नहीं हो रहा था। मैं मुस्करा कर बोला—"ये फ़िज़ूल बातें किसने तुम्हारे सिर में भर दी हैं, आनन्द?"

"सही बात है मंगल, उस प्रेत से मेरी भेंट हुई थी।"

"कब, कहाँ?"

"अपनी यात्रा के सिलसिले में, छोटा नागपुर के जंगलों में।"

"फिर उसने तुम से क्या कहा?"

"वह चित्रकार था, बहुत सफल चित्रकार..पर रहो, मैं शुरू से कहता हूँ।"

चारों तरफ़ अन्धकार हो चुका था। नौकर ने टेबिल पर लैम्प लाकर रख दिया। लैम्प के प्रकाश में मैंने देखा, आनन्द का चेहरा पसीने से भर गया था, मानो उसके स्मृति-पट पर बीते हुए दिनों की कुछ तस्वीरें गुज़र रही थीं। तस्वीरें सदा आकर्षित करती हैं; पर अगर तस्वीर भयंकर हो तो उसे देख, मनुष्य विचलित हो जाता है। आनन्द के स्मृति-पट से इस वक्त शायद भयंकर चित्र गुज़र रहे थे।

मैंने रुचि ले कहा—"हाँ आनन्द, तो तुमने क्या देखा था?"

आनन्द ने एक गिलास पानी पिया, धीरे से खाँसा और फिर रूम से मुँह पोंछ कर बोला—"मैं तुमसे कोई हँसी की बात या बनावटी कहा नहीं कह रहा हूँ। मुझे कहानी कहना भी नहीं आता। तुम कहा लिखनेवाले झूठी और बनावटी घटनाओं का भी ऐसा वर्णन कर देते कि वे सच्ची और यथार्थ लगने लगती हैं। मुझे वह कला नहीं आती हो सकता है, मैं सच्ची बातें भी ऐसे ढंग से कह दूँ कि तुम्हें बनाव लगें। पर यह घटना मेरे जीवन की बहुत महत्वपूर्ण घटना है—ऐ घटना जिसने मेरे जीवन पर जबर्दस्त प्रभाव डाला और इसका क ही बदल दिया।"

मुझे आनन्द की भूमिका पसन्द नहीं आ रही थी, बोला—"प आखिर हुआ क्या था, कुछ सुनूँ तो?"

उसके बाद आनन्द ने मुझे अपनी आपबीती सुनायी। ऐसी रोमांच कारी और भयंकर कहानी मैंने आज तक नहीं सुनी थी। हालाँकि आनन्द ने कहानी सिलसिलेवार और आकर्षक ढंग से नहीं कही थी, फि भी मैं मन्त्र-मुग्ध हो उसे सुनता रहा।

आनन्द की कहानी बहुत लम्बी-चौड़ी थी। पर उसने जो कु कहा, उसका तात्पर्य संक्षेप में यही था।

(४)

अपनी यात्रा के सिलसिले में वह एक दफा राजगृह पहुँचा। राजगृ में कुछ दिन ठहर, फिर जंगल के रास्ते दक्षिण की ओर बढ़ गया। ए

प्रेत की छाया

दिन चढ़ा, तो बिना रुके मीलों बढ़ता चला गया, रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। घनी झाड़ियों के बीच से पगडंडी चली गयी थी। पगडंडी भी पथरीली थी और मानिनी नायिका की तरह बीच-बीच में लुप्त हो जाती थी। आनन्द इस उम्मीद में बढ़ता जाता था कि अब पगडण्डी खतम होगी और कोई नज़र आ गया। पर जंगल अधिकाधिक घना और मार्ग दुस्तर होता गया। और एक जगह पत्थर से जबर्दस्त ठोकर खा आनन्द गिर पड़ा। अपने ज़ख्मी और लहुलुहान पैर को उसने सँभाल कर आगे बढ़ाया ही था कि एक बड़ा काँटा आधा उसके तलवे में गड़ गया। आनन्द आह भर कर वहीं बैठ गया। काँटा निकलने में बड़ी वेदना हुई और काँटे के साथ करीब एक तोला खून बाहर निकल पड़ा। आनन्द हिम्मत हार गया और निस्तेज हो वहाँ बैठा रहा। बैठे-बैठे उसकी आँखें झपने लगीं और वह लेट गया।

कुछ देर बाद आनन्द की आँखें खुलीं, तो सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहा था। सन्ध्या समय इस घने जंगल में अपने को अकेला देख आनन्द घबरा गया। एक तो जङ्गल के ओर-छोर का पता नहीं चल रहा था और दूसरे उसके पैर भी अभी इस काबिल न थे कि वह तेज़ी से एकदम बढ़ सकें। आनन्द ने चारों ओर नज़र दौड़ायी। उस ओर दूर कहीं झुरमुट में छिपा हुआ उसे ईंटों का ढेर-सा नज़र आया। आनन्द के हृदय में आशा का कुछ संचार हुआ और वह उसी ओर बढ़ा। वहाँ पहुँच उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया। पुराने जमाने का कोई बृहत् मकान टूट-फूट कर खँडहर का रूप धारण किये हुये था। छतें तो

सभी गायब थीं, पर एक कोठरी की चार दीवालें मौजूद थीं। दरवाज़े जगह कुछ चट्टानें थीं। आनन्द ने बिना छत के उसी कमरे मे प्रवे किया।

ज्यों-ज्यों अन्धकार बढ़ता जा रहा था, जंगल का दृश्य अधि भयावह होता जा रहा था। वह थकावट से चूर था। उसके पास ए टॉर्च था, जिसकी रोशनी बहुत धीमी पड़ गई थी। उसकी रोशनी में सोने लायक साफ जगह ढूँढ़ने लगा। टॉर्च की रोशनी जो एक दफ़ दीवाल पर पड़ी, तो आनन्द चौंक पड़ा। दीवाल साधारण न थी, उस प चित्रकारी की गई थी। आनन्द की जिज्ञासा जाग्रत हो गई। वह खुद चित्रकार जो था! इस अँधेरी रात में, इस भयंकर स्थान में एक खँडहर की दीवाल पर की गई चित्रकारी को देख उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। वह देर तक टॉर्च जलाये दीवालों की परीक्षा करता रहा। दीवाल पर जगह-जगह धब्बे पड़े थे और रंग भी फीका पड़ गया। पर तो भी चित्र का जो अंश दीख पड़ता था, उसे देख आनन्द मुग्ध हो गया। न जाने कब का यह भवन था, न जाने किस चित्रकार ने इस पर यह चित्रकारी की थी। यह राजपूत-कालीन कला-सी लगती थी। महलों और बेगमों की तस्वीरें कितनी सजीव और सौंदर्य पूर्ण थीं! यही सोचता हुआ आनन्द तब तक तस्वीरें देखता रहा, जब तक उसके टॉर्च की रोशनी खत्म न हो गई। फिर उन्हीं तस्वीरों के विषय में विचारता हुआ वह सो गया। उसने निश्चय किया था कि सुबह उठकर वह तस्वीरों को ध्यान से देखेगा। चूँकि वह बहुत थका-माँदा था, उसे बहुत गहरी नींद आ गई।

सहसा आनन्द की आँखें खुल गईं और उसने देखा कि सारा कमरा प्रकाश से भरा था, मानों किसी ने वहाँ हजारों बल्ब जला दिये थे। उस प्रकाश में दीवाल के चित्र चमक रहे थे, मानों अभी-अभी कल के बने हुये हों। आनन्द विस्मय-विमुग्ध-सा देख ही रहा था कि उसे पीछे से आवाज़ सुनाई पड़ी। कोई बोला—"सुनो!"

आनन्द ने चौंक कर पीछे की ओर देखा। जो कुछ देखा, उसे देख उसका हृदय दहल गया। उसके सामने एक मानव-मूर्ति खड़ी थी। उसके दोनों हाथ कटे हुए थे और उनसे खून बह रहा था। उसके गले में भी एक जबरदस्त जख्म था और उससे भी रक्त-प्रवाह हो रहा था। वह अपने लूले हाथों को जोरों से हिला रहा था और आनन्द की ओर संकेत कर कह रहा था—"सुनो!"

इस भयंकर दृश्य को देख आनन्द अपने को न सँभाल सका; हालाँकि उसमें हिम्मत की कमी नहीं थी। उसका सिर चक्कर खाने लगा, उसकी सोचने की शक्ति जाती रही। लगा कि चारों ओर अन्धकार छा रहा है, और वह बेहोश हो गिर पड़ा।

उसी अचेतनावस्था में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह मनुष्य उसके निकट आ उसे होश में लाने की कोशिश कर रहा है। उसने उसके स्पर्श का अनुभव किया और खून की बूँदों का आघात उसके गालों और चेहरे पर पड़ा। वह सिहर उठा और भीतर ही भीतर काँप उठा। उसे सुन पड़ा, वह मनुष्य कह रहा था—"मुझसे डरो नहीं। मैं तुम्हारा बिगाड़ ही क्या सकता हूँ!"

आनन्द का शरीर काँप रहा था। और वह रह-रह कर हिल उठता था। वह अपने को सँभालने की बहुत कोशिश करता, पर अपने शरीर का कम्पन रोकने में सफल नहीं हो सका।

आनन्द ने स्पष्ट सुना, कटे हाथों और जख्मी गरदनवाला वह मनुष्य बोल रहा था—"तुम इन चित्रों को बहुत ध्यान से देख रहे थे। तुम्हें चित्रकारी से प्रेम है?"

आनन्द की ज़बान न खुली। वह भय से ऐंठ गई थी। वह कुछ बोला, पर उसके अन्तर ने जवाब दिया—"हाँ!"

और शायद उस मनुष्य ने, जिसके हाथों और गरदन से खून टपक रहा था, अन्दर की यह आवाज़ सुन ली थी। वह फिर बोला—"तुम्हें ये चित्र पसन्द आये?"

"बहुत। काश, मैं ऐसे चित्र बना पाता!"

उस मनुष्य के सफेद चेहरे पर खुशी छा गई; बोला—"इन चित्रों को तुम अब देखो। तुम जो देख रहे थे, उन पर तो धब्बे पड़े थे, और उनका रंग उड़ गया था।"

आनन्द ने तस्वीरें देखीं। शृंगार रस से सराबोर, सुन्दरियों की भाव-पूर्ण विभिन्न मुद्राओं के चित्र देख आनन्द मुग्ध हो रहा था।

"मान लो, तुम बहुत बड़े जागीरदार हो। किसी चित्रकार ने तुम्हारे लिये ऐसे चित्र बनाये, तो तुम उस चित्रकार को क्या पुरस्कार दोगे?"

"मैं उसे मुँह माँगा इनाम दूँगा। मैं उसे दौलत से लाद दूँगा।

वह जख्मी प्राणी जोर से हँसा। इस हँसी के वेग से उसका आधा कटा हुआ गला घर-घर आवाज़ करने लगा और उसके लूले हाथ हिलने लगे। उसकी इस भयंकर हँसी को देख आनन्द ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

वह बोला—"जानते हो, इन तस्वीरों के बनानेवाले को क्या इनाम मिला था?"

"नहीं तो। आप जानते हैं?"

"अच्छी तरह। तुम भी जानना चाहते हो?"

"हाँ।"

"तो सुनो, जिस चित्रकार ने ये चित्र बनाये थे, उसका नाम जीवन था। चित्रकारी को उसने अपना पेशा बना लिया था। पचीस-छब्बीस वर्ष तक वह अपने गाँव में रह इस कला का अभ्यास करता रहा। जब उसे विश्वास हो गया कि उसकी कला मँज गई है, तब वह बाहर निकला। और पहला स्थान जहाँ वह गया, यही था, उस वक्त झुरमुट के बीच यहाँ एक विशाल महल खड़ा था। बिहार, बंगाल और उड़ीसा के सूबेदार के एक प्रमुख जागीरदार का यह रंगमहल था। विलास की सामग्रियों से यह महल भरा था, और जागीरदार की कई दर्जन ज़वान और खूबसूरत बीवियाँ, जो हिन्दुस्थान के भिन्न-भिन्न हिस्सों से लाई गई थीं और जिन्हें बेगम कहा जाता था, इसमें रहती थीं। जागीरदार समय-समय पर सूबेदार के पास काम के लिये जाता था, पर उसका ज्यादा वक्त यहाँ रंगरेलियाँ मनाने में ही बीतता था। जीवन ने जागीरदार से भेंट की और उसे अपने चित्र दिखलाये। उस सरदार को जीवन के चित्र बहुत पसन्द आये

और उसने जीवन से कई फरमाइशी तस्वीरें बनवाईं। उन चित्रों को देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने कहा—"चित्रकार, क्या तुम मेरे महल की दीवालों पर भी तस्वीरें बना सकते हो?"

"क्यों नहीं, सरदार!" जीवन ने कहा—"पर मुझे कैसे चित्र बनाने होंगे?"

"मेरे खास कमरे की दीवालों को तुम मेरी और मेरी बेगमों की तस्वीरों से भर दो। चुनी हुई मुद्राओं में तुम मेरी बेगमों की ऐसी तस्वीरें बनाओ, जिससे उसकी खूबसूरती की विशेषतायें स्पष्ट हो जाँय। क्या तुमने शृंगार की कवितायें नहीं पढ़ी हैं, जीवन?"

जीवन को बिहारी के कई दोहे याद थे। उसने नायिका के वर्णन बिहारी के शब्दों में सरदार को सुनाये। सरदार ने कहा—"तुम खुद काफी जानते हो, जीवन! कहो, कब से शुरू करते हो?"

"आप जब से कहें, पर एक बात है।"

"क्या?"

"चित्र बनाते वक्त बेगमों का हाजिर रहना जरूरी होगा, और मैं जिस मुद्रा में कहूँ, उन्हें कुछ देर तक बैठना पड़ेगा। तभी चित्रों में असलियत आयगी।"

"अच्छी बात है। तुम्हें कितना समय लगेगा?"

"कम से कम दो मास।"

दूसरे दिन अपने खास कमरे में सरदार ने अपनी सभी बेगमों को बुलाया और जीवन को साथ ले उस कमरे में गया। कई दर्जन बेगमें

बुरका डाले बैठी थीं। सरदार के इशारे से बेगमों ने बुरका उलट लिया। ऐसा मालूम हुआ कि आसमान में अनेक तारे एक ही दफा प्रकट हो उठे हों।

सरदार ने उन्हें सम्बोधित कर कहा—"आज से दो मास तक तुम लोग समझ लो कि इस महल का मालिक मैं नहीं हूँ, जीवन है। यह तुम लोगों की तस्वीरें दीवारों पर बनायेगा। उसकी बातों का ख्याल करना। वह तुम्हें जैसा श्रृंगार करने को कहे और जिस मुद्रा में बैठने को कहे बैठना; नहीं तो उसकी तस्वीरें यथार्थ न हो पायँगी। जीवन की कला निर्दोष है। उससे गलती हो नहीं सकती। अगर तस्वीरें अच्छी न हुईं, तो इसकी जिम्मेदारी तुम पर होगी।"

इस प्रकार जीवन चित्र बनाने में लगा। वे सुन्दरियाँ जिन पर सूर्य का प्रकाश भी नहीं पड़ता था, उसके हुक्म की पाबन्द थीं। जीवन अपने को बहुत खुशकिस्मत समझ रहा था। उसने बहुत लगन और परिश्रम के साथ चित्र बनाये। दो मास बाद कमरे का रूप ही बदल गया।

सरदार किसी काम से सूबेदार के पास मुंगेर गये हुये थे। लौट कर आने पर अपने कमरे को देख खुश हो गये। अपनी बेगमों के साथ उन्होंने चित्रों का मुआइना किया और तब जीवन की ओर मुड़ कर बोले—"मेरे कमरे की तरह सजा हुआ कमरा इस सूबे में किसका होगा? किसी का नहीं। जीवन, मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूँ?"

जीवन के हृदय में आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं। यह उसकी पहली महान् सफलता थी। अभी उसके सामने सारा जीवन पड़ा था।

ऐसी खुशी के न जाने कितने अवसर अभी आयँगे, वह मन ही मन सोच रहा था। सरदार की बातें सुन कर बोला—"सरदार को मेरे चित्र पसन्द आये, यही मेरे लिये बहुत बड़ा पुरस्कार है।"

सरदार ने उत्साह से जीवन के हाथ पकड़ लिये और बोला—"मैं तुम्हें बहुत बड़ी जागीर दूंगा, जीवन! तुम्हें किसी चीज़ की कमी न रहेगी, मेरे दिली दोस्त! पर मेरी एक शर्त्त है, जीवन! मानोगे?"

"वह क्या, सरदार?"

"आज से तुम चित्र बनाना छोड़ दो। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी बनाई चीज़ दूसरी जगह भी रहे। मैं अपने कमरे को अनुपम बनाये रखना चाहता हूँ। यह शर्त्त तुम्हें माननी पड़ेगी।"

सरदार की बातें सुन जीवन अवाक् रह गया। वह एक कलाकार था। और यह एक सच्ची बात है कि सच्चे कलाकार के हृदय में जब प्रेरणा आती है, तो दुनिया की कोई ताकत उसे कला की साधना करने से रोक नहीं सकती। जीवन एक सच्चा और ईमानदार कलाकार था। कला की साधना ही में उसे आनन्द मिलता था। उसने कहा—"पर सरदार, मुझे शक है कि बिना तस्वीरें बनाये रह न सकूंगा।"

सरदार की त्योरी में बल पड़ गये। उसकी मुद्रा कठोर हो गई। अधिकार-मद से मत्त ऐसे सरदार शायद ज़रा-सा भी विरोध सहने की सामर्थ्य नहीं रखते। उसने पूछा—"तो तुम्हारा यही फ़ैसला है?"

"ऐसी शर्त्त तो मैं नहीं कर सकूंगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मुझ

मैं अपनी कला को बेचूंगा नहीं। पर तस्वीरें बनाना तो मैं दुनिया की सारी दौलत मिलने पर भी न छोड़ सकूंगा।"

सरदार के चेहरे पर क्रोध के लक्षण स्पष्ट हो गये थे। कठोर शब्द में वह बोला—"तुम्हें छोड़ना पड़ेगा जीवन, और तुम छोड़ोगे।"

"क्या आप मुझे जन्म भर कैद में रखेंगे?"

"तुम आजाद रहोगे, तुम्हारे पास जागीर रहेगी; पर तुम तस्वीरें न बना सकोगे। अगर तुम अपनी मर्जी से ऐसा न करोगे, तो तुम्हें ऐसा करने को मजबूर किया जायगा।"

जीवन को भी तैश आ गया। बोला—"मुझे नहीं चाहिये आप की जागीर। मुझे विदा कीजिये, सरदार!"

"तुम जाना चाहते हो? अच्छा, पर ऐसे न जा सकोगे।" उसने आवाज़ दी और एक सैनिक एक नंगी तलवार लिये सामने आ खड़ा हुआ। सरदार ने हुक्म दिया—"इसके दोनों हाथ काट डालो।"

सारे कमरे में सन्नाटा-सा छा गया। बेगमें चीख उठीं। सैनिक चौंक गया। कातर स्वर में जीवन बोला—"यही मेरी कला का पुरस्कार है, सरदार?"

सरदार ने मानो उसके प्रश्न को सुना नहीं, बोला—"तुम्हें शर्त मंजूर है?"

जीवन छाती तान कर बोला—"हरगिज नहीं!

सरदार ने गरज कर कहा—"हुक्म की तामील करो।"

और सैनिक ने जीवन के दोनों हाथ काट डाले।

आनन्द अभी तक चुपचाप कहानी सुन रहा था, अब चौंक कर उसने पूछा –"तो आप ही...?"

"हाँ, मैं ही जीवन हूँ।" वह बोला—"पर सुनो, मेरे दोनों हाथ काट डाले गये। बेगमों का खूबसूरत चेहरा मुझे डाइनों जैसा लगने लगा। उस सजे कमरे से मुझे अरुचि हो गई। दुनिया मुझे बहुत वीभत्स और आकर्षणहीन लगने लगी। मैंने कहा—"दुष्ट, पापी; तूने मेरा जीवन व्यर्थ कर डाला। तुम ने मुझे मार ही क्यों न दिया! अब इस जीवन के बोझ को ढोकर मैं क्या करूँगा?" और मैंने सैनिक की तेज तलवार के नीचे अपनी गरदन रगड़ दी। दूसरे क्षण मेरी लाश उस जमीन पर तड़प रही थी।"

आनन्द ने अब ध्यान से जीवन की ओर देखा। उसके कटे हाथ और गरदन का रहस्य अब उसकी समझ में आया। साथ ही यह भी उसके सामने स्पष्ट हो गया कि वह एक प्रेत से बातें कर रहा है। पर इतनी देर तक सम्मुख रहने के बाद उसका भय मिट गया था। उसने हिम्मत कर प्रश्न किया—"यह कब की बात है?"

"यह उस जमाने की बात है, जब मुट्ठी भर गोरे इस सूबे को तबाह कर रहे थे। नवाब के पास इतनी ताक़त न थी कि उन लुटेरों से अपनी प्रजा की रक्षा कर सकता। रहती भी तो कैसे? उसके बहादुर सरदारों का जौहर तो निर्दोष कलाकारों के हाथ काटने में दिखाई देता था। मेरे सामने कुछ वर्षों के बाद दो दर्जन गोरों ने आ, इस महल पर अधिकार कर लिया। उस वक्त सरदार के पास दो सौ सैनिक थे। कुछ भाग गये,